International Journal of Sociology and Political Science
www.sociologyjournal.in
Online ISSN: 2664-7745, Print ISSN: 2664-7737
Received: 01-12-2021; Accepted: 15-12-2021; Published: 30-12-2021
Volume 3, Issue 2, 2021, Page No. 70-72

कृषि व्यवस्था के संबंध में समाजवादी अवधारणा

अखिलेश त्रिपाठी
ईश्वरशरण पी. जी. कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
आर्थिक क्षेत्र में न्याय और सम्पन्नता ही समाजवाद का लक्ष्य है। न्याय की सार्थकता सम्पन्नता पर निर्भर करती है और भारत में सम्पन्नता उद्योग तथा कृषि पर आधारित है। चूँकि उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे माल की पूर्ति कृषि से होती है। अतः कृषि विकास पर ही आर्थिक सुदृढ़ता निर्भर है। लेकिन वास्तविकता यह है कि भारतीय कृषि इतनी पिछड़ी हुई है कि खाद्यान्न की दृष्टि से भारत आत्मनिर्भर नहीं है। यद्यपि खेती के ऊपर सम्पूर्ण देश एवं सरकार का ध्यान गया है क्योंकि जब तक भारत की कृषि व्यवस्था का विकास नहीं होगा तब तक वास्तविक अर्थों में भारत का विकास नहीं हो सकता। देश में अधिकांश लोगों को संतुलित और पूर्ण भोजन नहीं मिलता और कुछ प्रतिशत जन संख्या तो वास्तविक जीवन स्तर से नीचे अपना जीवन गुजार रही है। कृषि के पिछड़ेपन के कारणों पर डॉ0 लोहिया ने दृष्टिपात करते हुए पंचवर्षीय योजनाओं को और उनको क्रियान्वित करने के तरीको को दोषी ठहराया। उन्होंने कहा कि तकाबी बांटने की नीति भी असफल हुई है, क्योंकि उनका क्रियान्वयन इस प्रकार होता है कि गरीब किसान तकाबी बांटने में लगे हुए कर्मचारियों द्वारा अच्छी तरह शोषित कर लिया जाता है।

मूल शब्दः कृषि व्यवस्था, समाजवाद, जमींदारी प्रथाए पंचवर्षीय योजना, सामन्तवादी प्रवृत्ति

प्रस्तावना

यदि समाजवाद की किसी देश में स्थापना करनी है तो जीवन और उसके मानदण्डों की गाँवों और शहरों में बराबर वृद्धि करनी होगी। इस समस्या पर आप चाहे जिस दृष्टि से विचार कीजिए, भारतीय कृषि को समाजवाद से अलग नहीं रख सकते। आर्थिक क्षेत्र में न्याय और सम्पन्नता ही समाजवाद का लक्ष्य है। न्याय की सार्थकता सम्पन्नता पर निर्भर करती है और भारत में सम्पन्नता उद्योग तथा कृषि पर आधारित है। चूँकि उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे माल की पूर्ति कृषि से होती है। अतः कृषि विकास पर ही आर्थिक सुदृढ़ता निर्भर है। लेकिन वास्तविकता यह है कि भारतीय कृषि इतनी पिछड़ी हुई है कि खाद्यान्न की दृष्टि से भारत आत्मनिर्भर नहीं है। यद्यपि खेती के ऊपर सम्पूर्ण देश एवं सरकार का ध्यान गया है क्योंकि जब तक भारत की कृषि व्यवस्था का विकास नहीं होगा तब तक वास्तविक अर्थों में भारत का विकास नहीं हो सकता। देश में अधिकांश लोगों को संतुलित और पूर्ण भोजन नहीं मिलता और कुछ प्रतिशत जन संख्या तो वास्तविक जीवन स्तर से नीचे अपना जीवन गुजार रही है। कृषि के पिछड़ेपन के कारणों पर डॉ0 लोहिया ने दृष्टिपात करते हुए पंचवर्षीय योजनाओं को और उनको क्रियान्वित करने के तरीको को दोषी ठहराया। उन्होंने कहा कि तकाबी बांटने की नीति भी असफल हुई है, क्योंकि उनका क्रियान्वयन इस प्रकार होता है कि गरीब किसान तकाबी बांटने में लगे हुए कर्मचारियों द्वारा अच्छी तरह शोषित कर लिया जाता है। इन योजनाओं से किसानों में भय हो गया है।

पंडित नेहरू कृषि के पिछड़ेपन के लिए अंग्रेजी शासन को जिम्मेदार ठहराते हैं। पंडित नेहरू का विचार था कि ''नया पूंजीवाद समस्त दुनिया में जो बाजार तैयार कर रहा था, उससे प्रत्येक दशा में हिन्दुस्तान के ढांचे पर प्रभाव पड़ा। ऐसे गाँव जहां बाहरी मदद की आवश्यकता नहीं थी और जहां परम्परा से धन्धे आपस में बंटे हुए थे, अब अपने पुराने रूप में बच नहीं सकते थे। लेकिन जो परिवर्तन हुआ, वह स्वाभाविक क्रम में नहीं था और उसने हिन्दुस्तानी समाज की सारी नींव को अस्त–व्यस्त कर दिया''।[1] उसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि हमारे समाज का जिसके पीछे सामाजिक अनुमति और नियंत्राण थे तथा जो जनता के सांस्कृति अधिकार का अंग था अचानक ही अपने आप बदल दिया गया और एक दूसरा ढाँचा जिसका संचालन बाहर से होता था, लाद दिया गया। हिन्दुस्तान अपने सम्पन्न स्वरूप को कायम न रख सका। इसका स्वाभाविक परिणाम कृषि पड़ा और हमारी कृषि व्यवस्था विकास की अपेक्षा पीछे को ओर बढ़ने लगी। भारतीय कृषि और उद्योग का संतुलन बिगड़ गया। श्रम का परम्परा से चला आने वाला विभाजन विगड़ गया। पंडित नेहरू ने कृषि व्यवस्था के पिछड़ेपन के कारणों को स्पष्ट करते हुए कहा था कि, ''जमींदारी प्रथा के जारी रहने से जमीन के मालिक के बारे में एक बिल्कुल नयी धारणा बनी और और इससे उन लोगों पर एक नयी और प्रबल चोट आयी। अब तक जो धारणा थी, उसमें जमीन पर तो नहीं बल्कि जमीन की उपज पर विशेषकर सामूहिक स्वामित्व था, शायद अंग्रेज इसको पूरी तरह समझ नहीं पाये लेकिन शायद कुछ अपनी वजहों से उन्होंने खास तौर पर जान बूझकर अंग्रेजी व्यवस्था जारी की।[2]

पंडित ने इस सम्बन्ध में जो तर्क दिया है वह बहुत कुछ सीमा तक वास्तविकता के समीप है। जमींदारी प्रथा तो समाप्त हो गयी परन्तु सामन्तवादी प्रवृत्ति अभी हमारे समाज में विद्यमान है। भारतीय कृषि व्यवस्था को छिन्न भिन्न करने में इस तत्व का मुख्य हाथ रहा है। पंडित नेहरू एवं डॉ0 लोहिया भी इस तत्व को कृषि व्यवस्था के पिछड़ेपन के लिए जिम्मेदार ठहराते हैं। जमीन को इस ढंग से जायदाद बना देने से केवल आर्थिक परिवर्तन नहीं हुआ बल्कि उसका प्रभाव अधिक गहरा पड़ा और उसने सहयोग पूर्ण सामाजिक ढांचे की धारणा पर चोट की।

जमीन के मालिकों का नया वर्ग समाज में पैदा हुआ। एक ऐसा वर्ग जिसको ब्रिटिश सरकार ने खड़ा किया था और बहुत कुछ हद तक

वह सरकार से मिला जुला था। पुराने ढांचे के टूटने से कई समस्याएँ पैदा हुई। पंडित नेहरू हिन्दू–मुसलमान समस्या का मूल इसी जमींदारी प्रथा में देखते थे। उनका विचार था कि, इस नई हिन्दू–मुस्लिम समस्या को वहीं पर पाया जा सकता है। जमींदारी प्रथा पहले पहल बिहार, जहाँ उसे ढांचे में, जो स्थायी बन्दोबस्त के नाम से मशहूर है, बड़े–बड़े जमींदार बनाये गये। इस व्यवस्था का कृषि प्रणाली पर अत्यधिक बुरा प्रभाव पड़ा पंडित नेहरू जमींदारी प्रथा के पूर्वरूपेण विरोधी थे। पंडित नेहरू ने 1930–1931 में संयुक्त प्रान्त के किसानों की समस्या के समर्थन में जमींदार वर्ग के स्वार्थो पर कठोर प्रहार किया था। उन्होंने उस समय की सरकार से आग्रह किया कि जमींदार वर्ग और किसानों के सम्बन्धों में सुधार किया जाय। पंडित नेहरू भूमि व्यवस्था में ऐसा परिवर्तन चाहते थे जिससे उत्पादन वृद्धि और आपसी सम्बन्धों में सुधार हो सके। पंडित नेहरू जी ने जहाँ जमींदारी प्रथा, कृषि की अव्यवस्था की चर्चा की वहाँ पर उन्होंने ऐसे सुझाव भी रखे कि जिससे इस प्रकार की समस्याओं का निराकरण हो तथा कृषि में उत्पादकता बढ़े।

पंडित नेहरू भारतीय कृषि व्यवस्था के लिए सहकारी कृषि प्रणाली को उचित मानते थे। पंडित नेहरू का विचार था कि, ''भूमि व्यवस्था में किसी आकस्मिक परिवर्तन के द्वारा ही वृहद् स्तर की सहकारी और सामूहिक कृषि आवश्यक रुप से जमींदारी प्रथा को ही समाप्त करके ही प्राप्त की जा सकती है।[3] लेकिन भारत प्रारम्भ से ही व्यक्तिवाद के मामले में सर्वोच्च रहा है चाहे यहाँ कि व्यक्तिवादी भावना सार्वजनिक कल्याण के सम्बन्ध में ही क्यों न हो, फिर भी व्यक्तिवाद व्यक्तिवादी ही होती है। कुछ व्यक्ति असमान्य कारणों से सहकारी शब्द से भयभीत होते हैं। पंडित नेहरू ने ऐसे व्यक्तियों के सम्बन्ध में लिखा है कि जो सहकारी शब्द से दूसरा अभिप्राय समझते हैं, ''मैं पूरी नम्रता के साथ दूसरे के विचारों को समझने का प्रयास किया और कुछ सीमा तक सफल भी हुआ हूँ। कभी–कभी लोग मुझ पर दोनों ही दृष्टिकोणों से विचार करने का दोषारोपण लगाते हैं। मैं उन व्यक्तियों के विचारों से कठिनाई महसूस करता हूँ जो सहकारी समिति एवं कृषि के सम्बन्ध में दुखपूर्ण विचार अपने आप में रखते हैं। जब सहकारी कृषि की बात आती है, यह कष्ट और भी बढ़ जाता है। अनेक प्रयत्नों के बाद भी उन्हें समझाने में समर्थ नहीं रहा हूँ। इस समस्या का मूल कारण यह था कि कांग्रेस में भी दो वर्ग थे। एक वर्ग प्रगतिशील विचारों का अनुसरण करने वाला था, पंडित नेहरू इसी वर्ग का नेतृत्व कर रहे थे। दूसरा वर्ग अनुदारवादी था, यह वर्ग सदैव प्रगतिशील विचारों का विरोध करता था, इस वर्ग में बड़े–बड़े जमींदार तथा पूंजीवादी सम्मिलित थे। सन् 1930–31 संयुक्त प्रान्त के किसानों की समस्याओं का अध्ययन और उसका निराकरण करने के लिए जो समिति बनायी गयी थी, उसमें तसहूक अहमद शेरवानी जैसे जमींदार थे। यह वर्ग किसानों का हित चाहते हुए भी उस वर्ग का कभी भी अहित नहीं कर सकता था जिसका वह स्वयम् अनुकरण करते थे। भविष्य में जब पंडित नेहरू के हाथ मे सत्ता आयी तब भी वह अपनी योजनाओं को कार्यरूप प्रदान नहीं कर सके, क्योंकि पंडित नेहरू भी इस वर्ग को नाराज नहीं करना चाहते थे।

कृषि प्रणाली के विकास के लिए पंडित नेहरू कृषि प्रणाली को ही एक मात्रा उपाय समझते थे। पंडित नेहरू के शब्दों में– सहकारिता ही केवल एक माध्यम है जो भारत में कृषि क्षेत्रा में सहयोग दे सकती है। सहकारी कृषि एक सही प्रणाली है जिससे भारतीय कृषि सफल हो सकती है।[4] प्रायः यह कहा जाता है कि सहकारी कृषि कुछ भयावह मार्ग की ओर अग्रसर होती है जैसा कि साम्यवादी व्यवस्था, परन्तु सहकारी कृषि प्रणाली का साम्यवादी व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। पंडित नेहरू ने कहा था कि जो व्यक्ति सहकारी कृषि प्रणाली के माध्यम से साम्यवादी व्यवस्था की कल्पना करके डरते हैं, मुझे हास्यापद लगता है। पंडित नेहरू ने इसी क्रम में आगे कहा कि यदि ऐसा किसी दबाव के कारण करना पड़ता है तो मैं समझता हूँ कि संयुक्त एवं सहकारी कृषि का विचार निश्चित रूप से सामाजिक है। कृषि के क्षेत्रा में भी ठीक इसी प्रकार जैसा कि औद्योगिक क्षेत्र में सामाजिक उपलब्धि अव्यवसायिक उचित है अपेक्षाकृत संकीर्ण अतिरिक्त उपलब्धि द्वारा। पंडित नेहरू का विचार था कि, ''मेरा विश्वास है कि सहकारी कृषि भारत की आवश्यकताओं के लिए उचित रहेगी। जब मैं भारत की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में कहता हूँ तब मैं किसी प्रकार के सैद्धान्तिक विचार नहीं रख रहा हूँ क्योंकि मेरा विश्वास है कि प्रत्येक को देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए।[5]

हमारे देश में जोत की सीमा बहुत कम है एक एकड़ या एक एकड़ से भी कम है या दो एकड़, परन्तु बहुधा एक एकड़ से भी कम है। किसी भी तरह की वास्तविक उन्नतिपूर्ण कृषि की कल्पना एक एकड़ या दो एकड़ वाले किसान से करना असम्भव है। वह बहुत ही कुशल किसान जो ऐसा कर लेता है। पंडित नेहरू छोटे किसानों के लिए सहकारी कृषि प्रणाली को आवश्यक समझते थे। पंडित नेहरू ने कहा था कि, ''छोटे किसानों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह सरकारी कृषि के उपायों के द्वारा एक साथ कार्य करें और वृहद स्तर के कृषि व अधिक साधनों के लाभ को प्राप्त करें। यहाँ तक कि सहकारी सेवाओं को अधिक ज्ञान वह प्रशिक्षण की आवश्यकता है जो कि प्रथम प्रयास है, और यदि हम उसे सफलतापूर्वक कर लेते हैं, तो हमारा दूसरा प्रयास भी आसान हो जाता है।[6] पंडित नेहरू सहकारी प्रणाली के साथ किसानों को भारी करों में छूट देने के पक्ष में थे। इसके समर्थन में उन्होंने सन् 1931 ई0 में संयुक्त प्रान्त के किसानों की समस्या को लेकर कहा था कि यदि कृषक वर्ग भारी करों से दबा रहेगा तो उससे अत्यधिक उत्पादन की कल्पना करना निरर्थक है।

डॉ0 लोहिया की दृष्टि में सरकार के द्वारा प्रारम्भ की गयी सहकारी कृषि भी असफल हुई क्योंकि ''यह खेती भी ऐसी है कि जिसमें कुछ लोगों ने अपनी सरकारी प्रभाव के द्वारा उसे अपनी आमदनी का साधन बनाया है। वह कोई ऐसी सहकारी खेती नहीं है जो किसानों के द्वारा चलायी गयी है।[7] समय–समय पर शासन द्वारा निम्न वर्गों के लिए खोली गयी सस्ते मूल्य की दूकाने प्रभावशाली व्यक्तियों के लिए लाभ का कारण बनती हैं। इस प्रकार डॉ0 लोहिया का विचार है कि सरकार के प्रभाव शून्य कार्य क्रम और प्रबन्धन ही कृषि के पिछड़ेपन के लिए मुख्य रुप से उत्तरदायी हैं। कृषि के पिछड़ेपन के लिए अपनी विकास नीति के क्रियान्वयन में सरकार आंशिक ढंग से उत्तरदायी हो सकती है परन्तु पूर्णरूपेण उसे ही उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। योजनाओं में जनता में से कर्मचारियों की नियुक्ति होती है, वे ही योजनाओं के क्रियान्वयन के दोषी हैं। तब तक कोई योजना सफल नहीं हो सकती जब तक जन सामान्य का स्तर ऊँचा नहीं होगा। डॉ0 लोहिया ने पण्डित नेहरू के समान इस प्रणाली की कमियों की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा था कि, ''व्यक्तिगत खेती, सामूहिक खेती और तीसरी चीज उद्योग भी जो गाँव के लायक होंगे, जो बनाये जा सकें, इन तीनों के समावेश से ही वह चीज होगी।[8]

डॉ0 लोहिया सामूहिक कृषि के पक्षपोषक थे, परन्तु डॉ0 लोहिया की सामूहिक कृषि की परिकल्पना, पंडित नेहरू की सामुदायिक कृषि की परिकल्पना से भिन्न है। पंडित नेहरू सामूहिक कृषि का आरम्भ शासन के माध्यम से करना चाहते थे प्रत्युत डॉ0 लोहिया इसको कृषकों के सहयोग के माध्यम से करना चाहते थे। डॉ0 लोहिया के अनुसार सामूहिक कृषि उनकी दृष्टि में केवल कृषकों द्वारा ही

चलायी जानी चाहिए। उसमें किसी भी शर्त पर ऐसे व्यक्ति सम्मिलित न किये जायँ जो हाथ से कृषि न करते हों, चाहे प्रबन्ध भले ही कुछ खराब हो। डॉ0 लोहिया का विचार था कि इस प्रकार का कृषि कार्य क्रम व्यापक स्तर पर चलाया जाना चाहिए। और कृषि से उत्पन्न वस्तुओं का वितरण भी परिश्रम के आधार पर निष्पक्ष ढंग से होना चाहिए। उनके कार्य क्रमानुसार कृषि कार्य को विकास देने के लिए अधिकाधिक भूमि को कृषि योग्य बनाया जाना चाहिए। डॉ0 लोहिया ने 1964 ई0 में कहा था कि इस समय भारत में 18 करोड़ एकड़ भूमि बेकार पड़ी हुई है, जिसको कृषि योग्य बनाया जा सकता है। इस भूमि में लगभग 3–4 करोड़ एकड़ भूमि बहुत कम खर्च में ही कृषि योग्य बनायी जा सकती है। दो से चार करोड़ एकड़ भूमि जलडूब जमीन है जिसे वैज्ञानिक शोध द्वारा जल मग्नता से छुड़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त गंगा–यमुना से कटने वाली भी लाखों एकड़ भूमि है। इस कटती हुई जमीन को बचाने के लिए उपाय किये जाने चाहिए।[9]

डॉ0 राम मनोहर लोहिया एवं पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अपने आर्थिक, साामाजिक दर्शन में कृषि को अभिकेन्द्र में रखा है।

पंडित नेहरू भारतीय कृषि के पिछड़ेपन के लिए अंग्रेजी शासन को जिम्मेदार ठहराते हैं। औपनिवेशिक शासन में गांव की क्रय शक्ति लगातार छीण होती जा रही है परिणामस्वरूप गांव की आत्मनिर्भरता समापन की ओर अग्रसर होने लगी। गांव के पारम्परिक उद्योग धीरे–धीरे समाप्त हो गये परिणामतः उद्योग एवं कृषि का सन्तुलन बिगड़ गया। पंडित नेहरू के अनुसार भारतीय कृषि की दुर्दशा के लिए जमींदारी प्रथा तथा समान्तवादी प्रवृत्ति का महत्वपूर्ण योगदान है।

पंडित नेहरू के समान डॉ0लोहिया भी जमींदारी प्रथा एवं सामन्तवादी प्रवृत्ति को कृषि के पिछड़ेपन को जिम्मेदार मानते हैं। डॉ0 लोहिया के अनुसार भूमि को इस प्रकार जयदात बना देने से केवल आर्थिक परिवर्तन नहीं हुआ प्रत्युत इसका प्रभाव और गहरा पड़ा और उसने सहयोगपूर्ण सामाजिक ढांचे पर गहरी चोट की।

पंडित नेहरू ने स्वयम् 1930–1931 में संयुक्त प्रान्त के किसानों के समस्या के समर्थन में जमींदार वर्ग के स्वार्थो पर गहरी चोट की। पंडित नेहरू भू व्यवस्था में इस प्रकार का सुधार चाहते थे। जिससे उत्पादन में वृद्धि हो तथा आपसी सम्बन्धों में सुधार किया जाय। पंडित नेहरू के अनुसार पारस्परिक भू–व्यवस्था में आकस्मिक परिवर्तन जमींदारी प्रथा के समापन से ही सम्भव है तभी सहकारी और सामूहिक कृषि का सूत्रापात हो सकता है।

पंडित नेहरू कृषि व्यव्रकरते हैं क्योंकि भारत में प्रति व्यक्ति जोत अत्यन्त न्यून है। अतः भारत की सामाजिक संरचना के लिए सहकारी कृषि अत्यन्त उपयुक्त है। पंडित नेहरू कृषि प्रणाली के साथ किसानों को करों में भारी छूट देने के पक्ष में थे।

डॉ0लोहिया की दृष्टि में भारत के लिए सहकारी कृषि उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसमें कुछ लोग सरकारी प्रभाव से अपने स्वार्थ पूर्ति का साधन बनायेगें। पंडित नेहरू की भांति डॉ0 लोहिया की भी धारणा थी कि सरकार के प्रभाव शून्य कार्यक्रम और प्रबन्धन ही कृषि के पिछड़ेपन के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी है।

डॉ0 लोहिया सामूहिक कृषि के पक्षपोषक थे परन्तु डॉ0 लोहिया की सामूहिक कृषि की परिकल्पना पंडित नेहरू की सामूदायिक कृषि की परिकल्पना से भिन्न है। पंडित नेहरू सामूहिक कृषि का प्रारम्भ शासन के माध्यम से करना चाहते थे प्रत्युत डॉ0 लोहिया सामूहिक कृषि का आरम्भ कृषकों या किसानों के माध्यम से करना चाहते थे। डॉ0 लोहिया के अनुसार सामूहिक कृषि में केवल किसान ही सम्मिलित रहेंगे न कि ऐसे लोग जो कृषि कार्य अपने हाथ से नहीं करते हैं। डॉ0 लोहिया के अनुसार सामूहिक कृषि से उत्पादन वस्तुओं का वितरण परिश्रम के आधार पर निष्पक्ष ढंग से होना चाहिए। डॉ0 लोहिया चाहते थे कि अधिकाधिक भूमि को कृषि योग्य बनाया जाय। इसके लिए डॉ0लोहिया ने अन्न सेना व भू सेना की परिकल्पना प्रस्तुत की तथा इसके लिए अन्न वितरण के अस्थायी समाधान प्रस्तुत किये।

संदर्भ

1. हिन्दुस्तान की कहानीः पण्डित जवाहर लाल नेहरू सम्पादक : चन्द्र गुप्त वार्ष्णेय सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 1966। पृष्ठ संख्या 200।
2. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या 201
3. सेलेक्टेड वर्क्स आफ जवाहर लाल नेहरू सम्पादकः वी. पी. नन्द एण्ड अदर्स ओरिएण्टेड बुक कम्पनी नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1972। पृष्ठ संख्या 110।
4. पण्डित जवाहर लाल नेहरू आन कम्युनिटी डेवलेपमेण्ट एण्ड पंचायती राज एण्ड को आपरेशन, सूचना प्रसारण मंत्रालय प्रकाशन डिवीजन नई दिल्ली 1964। पृष्ठ संख्या 145।
5. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या 145।
6. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या 146।
7. समाजवाद की अर्थ नीतिः डा0 राम मनोहर लोहिया, नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1968। पृष्ठ संख्या 30।
8. समाजवाद की अर्थ नीतिः डा0 राम मनोहर लोहिया, नव हिन्द प्रकाशन हैदराबाद 1968। पृष्ठ संख्या 36।
9. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या 36–37।